National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(22): 01-05
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

कुलदीप कुमार शुक्ल
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

डॉ. गटुलाल पाटीदार
सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

Correspondence:
कुलदीप कुमार शुक्ल
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

वाग्वर क्षेत्र की वैदिकी परम्परा

(वाग्वर क्षेत्र में संरक्षित वेद शाखा परम्परा)

डॉ.गटुलाल पाटीदार, कुलदीप कुमार शुक्ल

शोधसार-

राजस्थान के सुदूर दक्षिण दिशा में अरावली पर्वतमाला में हरीतिमाच्छादित सम्पूर्ण वाग्वरांचल अनादि काल से ही वैदिक वाङ्मय के लिए पांडित्यपूर्ण उर्वर भूमि रहा है। समय-समय पर इस पावन धरा पर आयोजित होने वाले वेद सम्मेलन एवं गोष्ठी-संगोष्ठियाँ का सुन्दर निदर्शन यहाँ के आवरण में दिखाई देता है। यहाँ का सुरम्य प्राकृतिक वातावरण, सुन्दर वृक्षावली, कल– कल करते नदी-नाले सदा ही प्रवाहित होते हुए निरन्तर क्रियाशील रहने की शिक्षा देने वाली माही– सोम– जाखम आदि नदियों का शान्त– शीतल– स्वच्छ जल, पक्षियों का सुमधुर कलरव तथा लोगों का वेदानुराग सदा से ही जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करता-कराता रहा है। निःस्पृह भाव से होने वाली वेद माता की सेवा के कारण ही वैदिक जिज्ञासुओं की वेद विषयक जिज्ञासा यहाँ आकर शान्त होती रही है। केवल वाग्वरांचल ही नही प्रत्युत सम्पूर्ण भारतवर्ष के अनेक स्थानों से विद्वज्जन यहाँ आकर नियमानुसार वेदाध्ययन करते रहे हैं। समर्थ गुरू के अमृततुल्य सान्निध्य को पाकर वेदानुरागी अपने आप को कृतार्थ मानते हुए जीवन को धन्य बनाते रहे हैं।

वाग्वरांचल में वेदशाखाओं विशेषेण ऋग्वेदीय शांखायन शाखा, शुक्लयजुर्वेदीय वाजसनेयी माध्यन्दिन शाखा और सामवेदीय कौथुमीय शाखा का नियमानुसार अध्ययन इस क्षेत्र की सर्वप्रमुख विशेषता रही है। शांखायन शाखा को पूरे विश्व में जीवित रखने का श्रेय यहां के नागर समाज को ही जाता है, जिन्होनें स्वयं पितृपरम्परा से इस शाखा में अध्ययन कर नवयुवकों को भी तैयार किया है। इस क्षेत्र के कर्मकाण्डीय वेदविद्वान् सम्पूर्ण भारतवर्ष में वाग्वरांचलीय वैदिकी परम्परा का प्रचार-प्रसार करने में अनवरत संलग्न रहे हैं।

कूट शब्द-

वेद, परम्परा, शांखायन शाखा, वाग्वरांचल, वैदिक ज्ञान, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, वेदों में क्या है?

प्रस्तावना-

अपने प्रारम्भिक काल से ही वाग्वरांचल में सभी वेदों की लगभग सभी शाखाओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक ग्रन्थों, उपनिषद् ग्रन्थों, वेदांगों जिनमें शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, कल्प, छन्द तथा निरूक्त प्रमुख हैं, का नियमपूर्वक अध्ययन होता रहा है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का शायद ही कोई ऐसा भाग होगा, जिसकी शून्यता-नगण्यता वाग्वरांचल में रही हो।

वेद भारतीय संस्कृति का मजबूत आधार स्तम्भ हैं। विश्व की अन्य संस्कृतियाँ जिनमें रोम, यूनान, मिस्त्र आदि प्रमुख हैं, समाप्त प्रायः हो गयी हैं, वहीं भारतीय संस्कृति आज भी अपने मूल रूप में वैश्विक धरातल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। यद्यपि भारतीय संस्कृति को अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने शक्ति के बल पर नष्ट करने का पूरा प्रयास किया, तथापि वे अपने इरादों में सफल नही हो सके। भारतीय संस्कृति विपरीत परिस्थिति में भी अक्षुण्ण रह पायी तो इसके मूल में हमनें वैदिक-ज्ञान-विज्ञान-चिन्तन परम्परा को ही पाया।

वैदिक काल में भारतवर्ष में ऐसे अनेक गुरुकुल थे, जहाँ समर्थ गुरु के शिव सान्निध्य में बालक के उपनयनोपरान्त वेद और शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी और समावर्तन संस्कार पर्यन्त वहीं रहते हुए वेदों के प्रतिपाद्य को जीवन में चरितार्थ करने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर गुरु प्रदत्त शिक्षानुसार जीवनयापन कर अपने जीवन को सार्थक बनाते थे।

तैत्तिरीयोपनिषद् में बहुत ही सुन्दर शब्दावली में वर्णित ब्रह्मचर्याश्रम के समापनावसर पर गुरु अपने अन्तेवासी शिष्य को जो अनेक प्रकार के उपदेश देते थे, वे आज भी प्रासंगिक एवं उपादेय ही हैं।

"सत्यं वद । धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्।[1] धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यान्न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यान्न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि।"[2]

लोढीकाशी अपरनामख्यात वाग्वरांचल में भी इसी गुरुकुल परम्परा का पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा भाव से निर्वहन आदिकाल से अद्यावधि होता रहा है, यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ ही भारतवर्ष की तरह ही यहाँ भी गुरुकुलों की संख्या में कमी जरूर आयी, तथापि अध्ययन– अध्यापन निर्बाध गति से आज भी चल रहा है। अनेक कर्मकाण्ड की कक्षाओं, घर पर तथा मण्डलों में भी समर्थ गुरु द्वारा नयी पीढीं में अनवरत वैदिक ज्ञान का सिंचन किया जा रहा है।

वाग्वरांचल का परिचय-

विश्वमानदण्ड में विख्यात वीर वसुमती राजस्थान प्रान्त की माटी ने कई वीरों को जन्म दिया, न केवल वीर अपितु यहाँ के पाषण भी सुदृढ ही दृश्य-श्रव्य पढ़ते हैं। इसी प्रान्त के दक्षिण में अरावली पर्वतमाला का बाहुल्य है, इन्हीं पर्वतों के मध्यस्थितक्षेत्र 'वाग्वर' के नाम से विख्यात है। किसी समय राजस्थान के दो जिले डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तथा दक्षिण मेवाड़, मालवा एवं गुर्जरप्रदेश का कुछ भाग मिलाकर वाग्वरक्षेत्र कहलाता था, जो इस समय डूंगरपुर-बाँसवाड़ा इन दो जिलो में ही सिमट गया हैं। रियासतकाल में वाग्वरक्षेत्र की राजधानी बड़ौदा रही। बीहड़ जंगलों एवं पर्वतों के बाहुल्य वाले क्षेत्र को स्थानीय लोक भाषा में वगड़ा (जंगल) कहा जाता है, इसीलिए इस क्षेत्र का नाम वागड़ पड़ा। इसे प्राचीनसमय में संस्कृत-प्राकृत भाषा में वाग्वर, वार्गट, वागर, वागुटी, वैयागड़, नागखण्ड, पुष्पप्रदेश व गुप्तक्षेत्र के नाम से जाना-पुकारा जाता था।[3]

वाग्वरांचल का वैदिक इतिहास अत्यन्त समृद्ध रहा है। अतिप्राचीनकाल से ही इस क्षेत्र में ज्ञानगंगा अविरल रूप से प्रवहमान रही है। इस क्षेत्र की प्राचीनता के परिचायक स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थ हैं, जिनमें वाग्वरांचल का स्पष्ट उल्लेख है। राजस्थान का सुदूर दक्षिण दिशा वाला भाग वागड़ के नाम से ख्यात रहा है। स्कन्दपुराण में इस प्रदेश को 'वागुरि' नाम से अभिहित किया गया है। उसी काल में इसे कुमारिका प्रदेश भी कहा जाता था। गुप्तप्रदेश, पाताल प्रदेश, पुष्पप्रदेश, लाट प्रदेश, स्थलीमण्डल आदि नामों से भी वाग्वरांचल को पुकारा जाता रहा है। वाग्वरांचल के अन्तर्गत बांसवाडा, डूंगरपुर, प्रतापगढ का सम्पूर्ण क्षेत्र, उदयपुर, सिरोही, चित्तौडगढ का कुछ क्षेत्र तथा गुजरात व मध्यप्रदेश का सीमावर्ती क्षेत्र आता है।

"वागड़क्षेत्र के बीहड़ वनीय कोनों-कन्दराओं में कई नदियां कल-कल करती उमड़ाती-उफनाती बह-चल रही हैं। माही, सोम, जाखम, मोरम, अनास, भादर, गोमती इत्यादि इस क्षेत्र की प्रमुख नदियां हैं। माही को वागड़ की गंगा कहा जाता है। वागड़क्षेत्र आध्यात्मिक जगत में भक्ति का केंद्र रहा है। यहाँ कई योगियों, ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों एवं महापुरुषों ने तप-साधना कर अपनी वाणियों, बोलियों, भजन-कीर्तन, पदों, एवं सत्संग से इस क्षेत्र कि कीर्ति को चतुर्दिक किया हैं। यहाँ बहुसंख्य मात्रा में शिवालय आज भी उपलब्ध हैं। भक्ति परम्परा के प्रमुख सन्त मावजी महाराज (साबला), सन्त दुर्लभरामजी, गवरीबाई (वागड़ की मीरा), केशवाश्रम, भगवानदास, भैरवानन्द, नाथजी, स्वामी रामानन्द, स्वामी ठाकुरानंद, सुरमालदास, एवं गोविन्दगिरि हैं। वैदिक ज्ञान परम्परा के कई केंद्र यहाँ आज भी उपलब्ध है। जिसमें परम्परा से वेद को विद्यालय से विश्वविद्यालय तक पढाया जा रहा है। जिसमें ये प्रमुख है- बांसवाड़ा, घनोड़ा, छींच, खड़गदा, पीठ, एवं सागवाड़ा ।"[4]

वाग्वर क्षेत्र को "लोढी काशी" भी कहा जाता है। वस्तुतः "लोढी काशी" उपाधि है, क्योंकि इस क्षेत्र में भी काशी की तरह ही कर्मकाण्ड की अपनी पद्धति है, देवालयों की अतिशयता और लोगों में आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा है। यहां प्रायः समस्त धार्मिकोत्सवों को पूरे उल्लास के साथ मनाया जाता है। सभी धर्मों को समादर है। स्थापत्यकला, मूर्तिकला के क्षेत्र में भी वाग्वरांचल समृद्ध रहा है।

वाग्वरांचल की वैदिकी परम्परा-

प्राचीनकाल में पूरे भारतवर्ष में चारों वेदों की समस्त शाखाओं में अध्ययन के लिए गुरुकुल हुआ करते थे। इन गुरुकुलों में पिता अपने शिशु का उपनयन करवाकर गुरु के सान्निध्य में ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करवाते थे। गुरु के सामीप्य से बालक में वेदों का ज्ञान स्थापित किया जाता था। 25 की आयु तक वहीं रहकर वेद, उपनिषद्, व्याकरण, ज्योतिष आदि का अध्ययन किया जाता था। भारतवर्ष के लिए यह समय स्वर्णिम युग माना जा सकता है। पूर्व में मुगल आक्रान्ताओं और बाद में अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश कर हिन्दू धर्म के आधारस्तम्भ देवालयों और गुरुकुलों को नुकसान पहुंचाया, परिणामस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा पद्धति समाज में लागू हो गई और गुरुकुल समाप्तप्रायः हो गये।

वाग्वरांचल भी इस भयावह स्थिति से अछूता नही रहा, यहां पर भी प्राचीन वेद परम्परा की अतिशय हानि हुई। प्राचीनकाल में वाग्वरांचल में यद्यपि वेदों की लगभग सभी शाखाओं के अध्ययन का प्रचलन था, तथापि अति प्रमुखता से ऋग्वेद की शांखायन शाखा, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा एवं सामवेद की कौथुमीय शाखा में दीक्षित लोगों का बाहुल्य था। शेष वेदों की शाखाओं की वर्तमान में न्यूनता है, किन्तु इन तीनों वेदशाखाओं में अधुनापि शिष्य परम्परा से अध्ययन-अध्यापन का कार्य निर्बाध चल रहा है।

ऋग्वेदीय शांखायन शाखा-

भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता, संस्कृति और कला के विकास और उन्नति का मूल आधार वेद हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय

को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। "ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्" अर्थात् जिसके द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, उसे ऋक् या मन्त्र कहते है और इनके समूह को संहिता कहा जाता है। इस संहिता के चार भेद हैं- ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। संहिताओं का दूसरा नाम ही वेद है, जिसकी परिभाषा देते हुए आचार्य सायण ने कहा है- **"इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदयते स वेद।"**[5] जबकि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द की उत्पत्ति इसप्रकार बताई है- **"विदन्ति जानन्ति ए विद्यन्ते भवन्ति ए विदन्ते सर्वाः सत्यविद्याः यैः यत्र वा स वेदः।"**[6] ऋग्वेद का विषय विद्वानों ने शस्त्र माना है। शस्त्र वह भाग है, जो मन्त्रों द्वारा उच्चरित होता है और जिसका गान नही किया जा सकता। ऋग्वेद की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त में कहा गया है कि-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि यज्ञिरे ।
छन्दांसि यज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।"[7]

अर्थात् ऋग्वेद की उत्पत्ति विराट् यज्ञ पुरुष द्वारा पुरुष मेध यज्ञ से हुई। महर्षि पतंजलि ने ऋग्वेद की कुल 21 शाखाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ 'महाभाष्य' में किया है, किन्तु पांच शाखाएं प्रमुख हैं- शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकायन।

सम्पूर्ण वैश्विक संस्कृत साहित्य जगत् में इन शाखाओं में से केवल शाकल शाखा को ही उपलब्ध बताकर महिमामण्डन किया गया है। जनजाति बहुल क्षेत्र होने के कारण वाग्वरांचल में प्रचलित वैदिक परम्पराओं के सम्बन्ध में इतिहासकारों के द्वारा विशेष ध्यान नही दिया गया, जबकि बांसवाडा नगर में अतिप्राचीन काल से ही ऋग्वेद की शांखायन शाखा का शिष्य परम्परा से अध्ययन-अध्यापन का कार्य निर्बाध रूप से चला आ रहा है। ऋग्वेदीय शांखायन ब्राह्मण के मन्त्रों का पठन-पाठन के माध्यम से वर्तमान में बांसवाडा नगर के नागर ब्राह्मण समाज के विद्वानों द्वारा अपने शिष्यों को हस्तान्तरण किया जा रहा है। शांखायन ब्राह्मण को ही कौषीतकि ब्राह्मण भी कहा गया है। शांखायन ब्राह्मण 30 अध्यायों और 226 खण्डों में विभक्त है। चरणव्यूह की महिदास कृत टीका में उद्धृत 'महार्णव' के नाम श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है कि ब्राह्मण का नाम कौषीतकि है, पर शाखा शांखायन कही गयी है **"उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वृच ईरितः। कौषीतकि ब्राह्मणं च शाखा शांखायनी स्थिता।।"**[8]

आदि शंकराचार्य ने भी ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कौषीतकि ब्राह्मण का नाम स्वीकार किया है। यद्यपि वर्तमान में ऋग्वेदीय शांखायनशाखीयो रुद्रपाठसंग्रहः नामक पुस्तक में शांखायन ब्राह्मण का उल्लेख किया गया है, जिसमें रुद्र से सम्बन्धित षष्ठाध्याय की पञ्च कण्डिकाओं को उल्लेखित किया गया है। इसी पुस्तक में शांखायनश्रौतसूत्र का भी वर्णन किया गया है।

विषय-निरूपण-शैली-

सम्पूर्ण ऋग्वेद का विषय सत्य ज्ञान है। ऋग्वेद के सभी मन्त्र ज्ञान स्वरूप हैं, फिर भी किसी यज्ञ कर्म में चार प्रकार के ऋत्विजों का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध होता है। ऋग्वेद का ऋत्विज् होता कहलाता है, जो यज्ञ कार्य में हवनीय द्रव्यों की आहुति हवन कुण्ड में देता है, उसी तरह यजुर्वेद का ऋत्विज् अध्वर्यु, सामवेद का उद्गाता और अथर्ववेद का ऋत्विज् ब्रह्मा होता है।

इस तरह प्रत्येक याज्ञिक कर्म में चारों ही वेदों के ज्ञाता विप्रवृन्दों का महत्त्व अपरिहार्य है। वाग्वरांचल में ऋग्वेद की शांखायन शाखा ही उपलब्ध होने के कारण निश्चित ही इसको जानने वाले विद्वज्जनों की समाज में अत्यधिक ख्याति है। शांखायन ब्राह्मण की विशेषता है कि इसमें सोमयागों के अतिरिक्त इष्टियों एवं पशुयागों का भी निरूपण हुआ है। शांखायन ब्राह्मण के प्रारम्भिक छह अध्यायों में दर्शपौर्णमासादि की विवेचना की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण का तो सम्पादन ही शांखायन ब्राह्मण से हुआ है।

"अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुरू परार्ध्यस्तद्यश्चैव देवानामवरार्ध्यो यश्च परर्ध्यस्ताभ्यामेवैतत्सर्वा देवताः परिगृह्य सलोकतमाप्नोति।"[9] परवर्ती होने के कारण ऐतरेय ब्राह्मण विषय निष्ठता, निरूपण शैली स्पष्ट है और इसीकारण से ऐतरेय ब्राह्मण को लोकप्रियता अधिक प्राप्त हुई, किन्तु सोमयाग के साथ याग मीमांसा के कारण शांखायन ब्राह्मण का महत्त्व अक्षुण्ण है। शांखायन ब्राह्मण में मानवीय आचारों के नियामक और निर्देशक तत्त्वों का विस्तार से वर्णन किया गया है। शांखायन ब्राह्मण में वाणी की सत्यमयता पर भी बल दिया गया है- **"रात्र्या उ शीर्षन् सत्यं वदति। स यदि ह वा अपि तत ऊर्ध्वं मृषा वदति। सत्यं हैवास्योदितं भवति।"**[10] **"सत्यमयो ह वा अमृतमयः।"**[11] शांखायन ब्राह्मण के मतानुसार मानव जीवन चतुष्टयात्मक है। भाष्यकार विनायक ने अपने लेख में चतुष्टय शब्द का अर्थ, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को माना है। इस तरह कहा जा सकता है कि शांखायन ब्राह्मण प्रामाणिक याग मीमांसा, प्राचीनता, संश्लिष्ट प्रतिपादन और प्रेरक आचार मीमांसा के कारण ब्राह्मण साहित्य में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।[12] "शांखायन शाखा की अपनी संहिता तो उपलब्ध नही है किन्तु ब्राह्मण व आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इस शाखा की तीन अन्य शाखाएँ भी हैं- 1 कौषीतकि , 2 महाकौषीतकि तथा 3 शाम्बत्य।"[13]

शांखायन शाखीय विद्वज्जनों का मानना है कि ऋग्वेद की अन्य शाखाओं जिसमें शाकल प्रमुख है की अपेक्षा शांखायन शाखा में मन्त्रों को उच्च स्वर में उच्चरित किया जाता है और अन्य शाखाओं में स्वरों को उतना महत्त्व नही दिया जाता है जितना शांखायन शाखा में दिया जाता है। साथ ही ऋग्वेद में "महानामनी" नामक विशेष अंश है जो केवल शांखायन शाखा में ही उपलब्ध होता है। इसमें कुल 13 मन्त्र हैं जिसके अन्तिम मन्त्र में पूर्वोल्लिखित समस्त देवताओं को नमस्कार किया गया है- **"नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये, नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः। नमो वाचे नमो वाचस्पतये, नमो विष्णवे महते करोमि।"**[14]

शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयी माध्यन्दिन शाखा –

यजुर्वेद के मन्त्रों को यजुः (यजुष्) कहा जाता है। यजुर्वेद ऋग्वेद और सामवेद की तरह पद्यात्मक न होकर गद्यात्मक है। यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय कर्मकाण्ड है इसलिए यज्ञ- यागादि सम्बन्धी समस्त कार्यों का ज्ञाता यजुर्वेदीय ही होता है। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि **"यजनात् स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः।"**[15] यजुर्वेद के अध्ययन की परम्परा के दो सम्प्रदाय हैं, यथा-

कृष्णयजुर्वेद तथा शुक्लयजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक मन्त्रों का ही केवल संकलन है। मन्त्रों की व्याख्या अथवा विनियोग नही बताया गया है। जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्र के साथ व्याख्या

और विनियोग का मिश्रण उपलब्ध है। मैक्डॉनल आदि का कथन है कि "कृष्ण यजुर्वेद गद्य-पद्य तथा मन्त्रब्राह्मण की उभयात्मक प्रवृत्ति के कारण पाठक की बुद्धि को मोहित कर उसे कुण्ठित कर देता है। जबकि शुक्ल यजुर्वेद विषय की दृष्टि से निर्मल है तथा पाठक की बुद्धि को चमत्कृत कर उसे परिष्कृत करता है।"[16] डॉ. मंगलदेव के मतानुसार "कृष्णयजुर्वेद की शाखाओं का विस्तार प्रायः दक्षिण भारत में और शुक्लयजुर्वेद का उत्तर भारत में है। स्वभावतः कृष्णयजुर्वेद के साहित्य पर जितना प्रभाव वैदिकोत्तर विचारधारा का है, उतना शुक्लयजुर्वेदीय साहित्य पर नहीं है।"[17]

शुक्लयजुर्वेद का नाम वाजसनेयी संहिता भी है। वाज अन्न को कहते हैं और सनि दान को। इसप्रकार अन्नदान करने के स्वभाव वाले महर्षि की सन्तान होने के कारण याज्ञवल्क्य को वाजसनेय कहा जाता है और इनके द्वारा आख्यात होने के कारण ही शुक्लयजुर्वेद को वाजसनेयी संहिता भी कहा जाता है। शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएं प्रसिद्ध हैं- काण्व और माध्यन्दिन शाखा।

शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् उपलब्ध हैं। वस्तुतः माध्यन्दिन शाखा को ही विद्वानों द्वारा यजुर्वेद माना गया है। शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में कुल 40 अध्याय हैं, जो 328 अनुवाक तथा 2086 मन्त्रों में विभक्त हैं। यजुर्वेद की दोनों ही परम्पराओं में कर्मकाण्ड ही विशेषेण वर्णित है। वाग्वरांचल में भी कर्मकाण्ड को पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार किया गया हैं इसीलिए इस क्षेत्र के विद्वत्परम्परानुयायी न केवल राजस्थान अथवा भारतवर्ष अपितु सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न स्थानों पर जाकर अपने ज्ञान और इस क्षेत्र की वैदिकी परम्परा को प्रचारित और प्रसारित कर रहे हैं। वाग्वरांचल में शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के अनुयायी विद्वान् विप्रवृन्दों की सर्वाधिक संख्या है। शुक्लयजुर्वेद के उपसंहार स्वरूप 40 वें अध्याय का सजीव स्वरूप वाग्वरांचल में समुपस्थित होता हैं।

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। "[18]

वाग्वरांचल में किसी भी शुभ कार्य में शान्तिसूक्त के निम्नलिखित मन्त्र का पाठ प्रायः होता है- "ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।"[19] शुक्लयजुर्वेद में यज्ञ सम्बन्धी सम्पूर्ण विधान दिया गया है। इसकारण से वाग्वरांचल में समय. समय पर अनेक यज्ञों का आयोजन होता रहता है, यथा- गणेश याग, होमात्मक लघुरुद्र, महारुद्र याग, अतिरुद्र महायाग, सूर्ययाग, विष्णुयाग, देवीयाग जिसमें नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्त्रचण्डी महायाग आदि प्रमुख हैं।
सामवेदीय कौथुमीय शाखा-

"सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्।"[20] सा का अर्थ है ऋचा और अम का अर्थ है गान अर्थात् जिस वेद में ऋचा (मन्त्र) का गान किया जाता है, वह वेद सामवेद कहलाता है। सामवेद का सम्बन्ध सूर्य से है। सूर्य और सामवेद के सम्बन्ध के विषय में कुछ विद्वानों के मतानुसार सामवेद का साक्षात्कार आदित्य ऋषि ने किया था। पातंजल योगसूत्र में ईश्वर का वाचक ॐ को कहा गया है- **"तस्य वाचकः प्रणवः ।"**[21] इसी ॐ को अनेक नामों से जाना जाता है,जैसे- प्रणव, उद्गीथ आदि। आचार्य सायण ने सामवेद के भाष्य के प्रारम्भ में बताया है कि अध्वर्यु यजुर्वेद से यज्ञ शरीर का निर्माण करता है, ऋग्वेद से होता उसे विभूषित करता है और उद्गाता उन ऋचाओं में सामरूपी मणियां और मुक्ताएं अलंकृत कर देता है।

यजुर्जाते यज्ञदेहे स्यादृग्भिस्तद्विभूषणम्।
सामाख्यां मणिमुक्ताद्या ऋक्षुतासु समाश्रिताः।।"[22]

महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में सामवेद की एक हजार शाखाएं बताते हुए इसे 'सहस्त्रवर्मा सामवेद' कहा है। प्राचीन ग्रन्थों में सामवेद की 13 शाखाओं का उल्लेख हुआ है- असुराणनीय, वासुरारणीय, वार्तान्तरेय, प्रांजल, राणायनीय, शाट्यायनीय, सात्यमुद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लाग्ल, कौथुमीय, गौतम तथा जैमिनीय । किन्तु वर्तमान में इन शाखाओं में से केवल तीन शाखाएं उपलब्ध है- कौथुमीय, जैमिनीय तथा राणायनीय ।

वर्तमान संगीत शास्त्र का मूल सामवेद है। सामगान में गान की आवश्यकता के अनुसार शब्दों को घटाया अथवा बढाया जाता है जिन्हें 'षड्विकार' कहा जाता है –

1 विकार - शब्द को आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित करना विकार कहलाता है जैसे- 'अग्ने' के स्थान पर 'ओग्नायि' ।

2 विश्लेषण - शब्द या पद को तोडना विश्लेषण है यथा - 'वीतये' का 'वोयि' तोया 2 वि उच्चारण करना ।

3 विकर्षण- किसी स्वर को देर तक खींचना , उसे दो या अधिक मात्रा के समान उच्चारित करना विकर्षण कहलाता है, 'ये' को 'या 2 3 यि' कहना।

4 अभ्यास- किसी पद का पौनःपुण्येन उच्चारण करना अभ्यास कहलाता है, जैसे- तोया 2 यि, तोया 2 यि।

5 विराम - गान की सुविधा हेतु शब्द को बीच में ही तोडकर रुक जाना अर्थात् पद के मध्य में ही यति देना विराम कहलाता है, जैसे-गृणानो हव्य दातये का गृणानो ह। व्यदातये उच्चारण करना।

6 स्तोभ - आलाप के योग्य पदों का ऊपर से योग स्तोभ कहलाता है, यथा- 'औहोवा' 'ऊ' आदि।

सामवेद संहिता के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि एक ही मन्त्र के आधार पर कई सामगान रचे गए हैं। इन गानों के नाम भी उन ऋषियों के नाम पर है, जिन्होनें इनकी रचना की है। जैसे- ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र की विभिन्न गान पद्धतियाँ लोक में प्रचलित है-

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।।"[23]

इस शाखा का प्रचलन गुजरात में अधिक होने और सीमावर्ती प्रदेश होने के कारण वाग्वरांचल में भी प्रचलित हुआ। प्राचीनकाल से सामवेद की कौथुमीय शाखा में मन्त्र पाठ का प्रचलन वाग्वरांचल में रहा है। कई वर्षों तक विदेशी आक्रान्ताओं की वेद विरुद्ध गतिविधियों के कारण सामवेद के अध्ययन की निरन्तरता में वर्तमान में पूरे भारतवर्ष में निश्चित ही कमी आयी है, वाग्वरांचल भी इससे अछूता नही रहा, फिर भी एक लम्बे अन्तराल के उपरान्त बांसवाडा से इसके अध्ययन की अलख जगी है।

यद्यपि पूरे वाग्वरांचल में सामवेद की कौथुमीय शाखा के ब्राह्मणों की संख्या सर्वाधिक है, किन्तु अभ्यास के नैरन्तर्य के

अभाव के कारण वाग्वरांचल में इस शाखा को सीखने वाले ब्राह्मणों की संख्या की कमी है। वर्तमान में बांसवाडा में नागर समाज के विद्वान् विप्रवृन्दों द्वारा बालकों में सामवेद की कौथुमीय शाखा का बीजारोपण किया जा रहा है। कई वर्षों तक यज्ञ-यागादि कार्यों में केवल यजुर्वेद के मन्त्रों का ही प्रयोग होता रहा, जिसकारण भी जन्मतः सामवेदान्तर्गत कौथुमीय शाखा के ब्राह्मणों में सामवेद के पाठ के प्रति विमुखता बनी रही, लेकिन वर्तमान में इस वाग्वरांचल में जो भी यज्ञानुष्ठान होते हैं, सभी जगह सामगान अवश्य ही होता है।

वाग्वरक्षेत्र के वेद के प्रमुख विद्वान्-

वाग्वरांचल आदिकाल से ही वैदिक परम्पराओं का अनुयायी रहा है। इस क्षेत्र के विद्वान् न केवल वागड क्षेत्र अपितु पूरे भारतवर्ष में भी जाकर यहां की परम्पराओं को प्रचारित- प्रसारित करते रहे हैं। साथ ही ऋग्वेद की शांखायन शाखा जिसे विद्वानों ने मृत मान लिया था, का भी पितृ परम्परा से अध्ययन निर्बाध हो रहा है। नागर ब्राह्मण समाज में आज भी पं. हर्षद नागर और इन्द्रशंकर झा इस शाखा में दीक्षित विद्वान् हैं, जो पूरे भारतवर्ष में आयोजित होने वाले वेद सम्मेलनों में अनवरत उपस्थित होकर ऋग्वेद की शांखायन शाखा की पद्धति से मन्त्रपाठ कर इस शाखा से सभी को परिचित करा रहे हैं। इनके द्वारा किये गये अथक प्रयासों का परिणाम ही है कि जिस शाखा को मृतप्रायः मान लिया गया था, उसकी मौजुदगी को वर्तमान में पुनः स्वीकार कर लिया गया है। डॉ. मनोहर द्विवेदी बांसवाडा के मूल निवासी थे और सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, बनारस में प्रोफेसर के पद पर कार्य करते हुए अथर्ववेद की शौनक शाखा को विश्व स्तर पर जीवित रखा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रो. श्रीकिशोर मिश्र के शब्दों में- "वेदों में शौनक शाखा पूरे हिन्दुस्तान में चलती है तो पं. मनोहर द्विवेदी के शिष्यों-विद्यार्थियों के माध्यम से ही संचालित है। इसके अलावा कोई दूसरा विद्वान् नही हुआ है, जिन्होनें इस शाखा को जीवित रखने का कार्य किया हो।"[24]

इसके अलावा शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयी माध्यन्दिन शाखा कर्मकाण्ड प्रधान होने से स्वाभाविक रूप से इसके विद्वानों की संख्या भी अधिक है। फिर भी कुछ प्राचीन विद्वानों और कुछ वर्तमानकालिक विद्वानों ने इस वेद शाखा के माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में वाग्वरांचलीय वेद परम्परा का प्रचार-प्रसार किया। इन विद्वानों में निम्न ख्यातिप्राप्त विद्वानों में परिगणित हुए- स्वामी रामानन्द सरस्वती, पं. करुणाशंकर शास्त्री, सन्त श्री मावजी महाराज, पं. नन्दलाल दीक्षित, पं. उमाशंकर शुक्ल, पं. महादेव शुक्ल, पं. प्रभाशंकर शुक्ल, पं. नारायण लाल भट्ट, पं. धरणीधर पण्ड्या, पं. नरेन्द्रकान्त शास्त्री, पं. मीठालाल त्रिवेदी, पं. छगनलाल द्विवेदी, पं. राजेन्द्र प्रसाद भट्ट, पं. नर्वदाशंकर त्रिवेदी, पं. इच्छाशंकर पाठक, पं. भालचन्द्र शुक्ल, पं. गजाजन त्रिवेदी, पं. श्रीकृष्ण शुक्ल, पं. कुलदीप पुरोहित, पं. ललिता शंकर शुक्ल, पं. लक्ष्मीनारायण शुक्ल, पं. भीमशंकर रावल, पं. दिव्यभारत पण्ड्या, पं. मनोहर भट्ट, पं. निकुज मोहन पण्ड्या तथा पं. हर्षवर्द्धन व्यास आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष –

वाग्वरक्षेत्र की वैदिकी परम्परा स्वसमृद्ध एवं पांडित्यपूर्ण रही है। आज भी वेदज्ञ विद्वज्जन इस परम्परा का आत्मानुशीलन कर चरितार्थ करने का कष्टसाध्य प्रयास पूर्ण निष्ठा-सामर्थ्य से कर रहे हैं। वेद को विद्यापीठ के रूप में स्थापित करने का प्रयास-उत्साह भी यहाँ के पण्डित-प्रवरों जनमानस में ही दिखाई देता हैं, और किया भी हैं। वाग्वरांचल में अनेक संस्थाएं और कर्मकाण्डी विद्वज्जन वेदों के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। अनेक धार्मिक आयोजन इस क्षेत्र में वेदों के गौरव को बढाने का कार्य कर रहे हैं। विभिन्न देवालयों में प्रायः प्रतिदिन जनसैलाब उमडा हुआ रहता है। निश्चय ही इन सभी कारणों से ही इस क्षेत्र को लोढी काशी की संज्ञा दी गई होगी। ऋग्वेद की शांखायन शाखा के अध्ययन की परम्परा इस क्षेत्र की बहुत बडी विशेषता है, जिसने इस क्षेत्र में इतर क्षेत्र के विद्वानों को यहां आकर अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः –

1. तैत्तिरीयोपनिषद्-(शिक्षावल्ली)-11/1, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं.2065
2. तैत्तिरीयोपनिषद्-(शिक्षावल्ली)-11/2, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं.2065
3. न प्रकाश, सम्पादक, डॉ. महेन्द्र प्रसाद सलारिया एवं डॉ. राजेश जोशी, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर-2018, पृष्ठ संख्या-95
4. ज्ञान प्रकाश, सम्पादक, डॉ. महेन्द्र प्रसाद सलारिया एवं डॉ. राजेश जोशी, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर-2018, पृष्ठ संख्या-98
5. यू.जी.सी. जूनीयर रिसर्च फैलोशिप तथा लैक्चरशिप परीक्षा संस्कृत, उपकार प्रकाशन आगरा, पृ. सं. 10
6. यू.जी.सी. जूनीयर रिसर्च फैलोशिप तथा लैक्चरशिप परीक्षा संस्कृत, उपकार प्रकाशन आगरा, पृ. सं. 10
7. ऋग्वेद- (पुरुषसूक्त)-10/90/7
8. चरणव्यूह टीका : archive.org
9. चरणव्यूह टीका : archive.org
10. कौषीतकि ब्राह्मण- 2/8
11. कौषीतकि ब्राह्मण- 2/8
12. शांखायन ब्राह्मण- डॉ. गंगासागर राय
13. राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका 2016 पृ. सं. 123
14. ऋग्वेदीयः शांखायनशाखीयो रुद्रपाठ संग्रहः पृ. सं. 33
15. राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका 2016 पृ. सं. 12
16. वेदों में क्या है ? पुस्तक महल प्रकाशन डॉ. प्रवेश सक्सेना पृ. सं.90
17. वेदों में क्या है ? पुस्तक महल प्रकाशन डॉ. प्रवेश सक्सेना पृ. सं.90
18. ईशावास्योपनिषद्-1
19. ब्रह्मकर्म सपर्या, मयूरेश प्रकाशन मदनगंज किशनगढ (राज.) पृ. सं.104
20. बृहदारण्यकोपनिषद्-1/3/2/2- वेदों में क्या है? पुस्तक महल प्रकाशन, डॉ. प्रवेश सक्सेना पृ. सं. 104
21. पातंजल योगसूत्रम् , भारती विद्या प्रकाशन दिल्ली वाराणसी पृ. सं. 51
22. वेदों में क्या है ? पुस्तक महल प्रकाशन, डॉ. प्रवेश सक्सेना पृ. सं.103
23. वेदों में क्या है ? पुस्तक महल प्रकाशन, डॉ. प्रवेश सक्सेना पृ. सं.108
24. बांसवाडा भास्कर–दिनांक, 22 जुलाई, 2016